माण्डूक्यकारिका में तर्क का स्वरूप

विनिता शर्मा

माण्डूक्योपनिषद् को अथर्ववेदीय माण्डूक्यशाखा के ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत माना जाता है। माण्डूक्योपनिषद् सब उपनिषदों में अत्यन्त छोटी उपनिषद है, इसमें परमात्मा के मुख्य वाचक (ओम्) शब्द का महत्त्व दिखाया गया है एवं आचार्य गौडपाद ने माण्डूक्यकारिका नाम से 215 कारिकाएँ लिखी है जिसमें माण्डूक्यउपनिषद् में कुल 12 मंत्रो पर अपना स्वतंत्र व्याख्यान भी है। माण्डूक्यउपनिषद् में कुल 12 मंत्र होने से यह मूल एकादश उपनिषदों में सबसे छोटा उपनिषद् है। प्राचीन एवं प्रमाणिक ग्यारह (11) का उपनिषदों में विशिष्ट स्थान है।[1] आचार्य शंकर ने इस उपनिषद् व कारिका दोनों पर भाष्य लिखकर इसका महत्त्व बढ़ा दिया। यह अद्वैत सिद्धान्त का प्रमुख ग्रंथ है। माण्डूक्योपनिषद् के 12 मंत्रो पर आचार्य गौडपाद द्वारा लिखे भाष्य रूपी कारिका में कारिकाओं की कुल संख्या 215 है जो चार प्रकरणों में विभक्त हैं–पहला आगम, दूसरा वैतथ्य, तीसरा अद्वैत तथा चतुर्थ अलातशान्ति। प्रथम प्रकरण के अन्तर्गत विचार के मुख्य विषय ओंकार निर्धारण, आत्मस्वरूप विवेचन, जागृतावस्था के तीन स्तर, ब्रह्म चिन्तन, उसकी प्राप्ति के उपाय और प्रणव का चिन्तन है।[2] आगम प्रकरण की कुल 41 कारिकायें है, जिनमें माण्डूक्यउपनिषद् के 12 मंत्रों को छोड़कर गौडपाद की कारिकायें 29 है, 29 कारिकाओ अठारह (18) कारिकाएँ उपमेय आत्मा व शेष उपाय प्रणव उपासना से संबंधित है। आगम प्रकरण में 29 कारिकाओं के अतिरिक्त वैतथ्य प्रकरण में 38, अद्वैत प्रकरण में 48 एवं अलातशांति प्रकरण में 100 कारिकायें है। माण्डूक्यउपनिषद् व कारिका पर शांकर भाष्य में अर्थवेदीय शांतिपाठ के बाद भाष्यकार का मंगलाचरण है तत्पश्चात् सम्बन्धभाष्य देने के बाद सर्वप्रथम मंत्र 1–6 माण्डूक्योपनिषद् के हैं जिन पर गौडपाद की 1–9 कारिकायें हैं। माण्डूक्योपनिषद् में ओंकार की तीन मात्रा अ, उ, म के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ का वर्णन करते हुए उनका क्रमशः समष्टि में वैश्वानर, हिरण्यगर्भ एवं ईश्वर के साथ अभेद किया गया है। उनकी अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ क्रमशः जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति है। जैसे प्रकरण 2 की कारिका में कहा गया है कि परमार्थ क्या है ?

न निरोधों न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।[3]

अर्थात् न प्रलय है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त ही है–यही परमार्थता है। इसी प्रकार परमार्थतः अद्वैतता की सिद्धि में कहा है कि जो–जो अद्वय है वह अनुत्पन्न है। परमार्थ में न प्रलय है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्ष है एवं न हीं मुक्त ही हैं। जो–जो भी द्वैत भाव है वह–वह उत्पन्न व नाश को है यानि वहाँ जातिवाद है, जहाँ–जहाँ जन्यता या जातिवाद है वहाँ–वहाँ द्वैतता है। परमार्थ में द्वैतता का अभाव है, अद्वैत होने से; अतः परमार्थ में जन्यता (जातिवाद) का अभाव है अजातिवाद होने से। आगम प्रकरण में वस्तु का निर्देश कर जीव और ब्रह्म की एकता तथा प्रपंच का मायामय तत्त्व प्रतिपादित करते हुए वैतथ्य प्रकरण में उसी को युक्तियों एवं उपपत्तियों से पुष्ट किया हैं। इस प्रकरण मे युक्तियों से स्वप्न का मिथ्यात्व सिद्धकर उससे दृश्यत्व में समानता होने के कारण सादृश्यता के आधार पर जाग्रतकालीन दृश्य का भी मिथ्यात्व प्रतिपादित किया हैं। आचार्य गौडपाद ने युक्तियों के द्वारा प्रपंच का मिथ्यात्व प्रतिपादन और उसका कारण बताने के लिए वैतथ्य प्रकरण आरम्भ किया।[4] दृश्य जगत का कोई अस्तित्व नहीं है। यह विश्व, स्वप्न के समान, माया के समान और गन्धर्वनगर के समान है।[5] शुद्ध आत्मा में पूर्व जीव की कल्पना की जाती है तब सभी बाह्य और आभ्यन्तर की कल्पना की जाती है जैसे रज्जू में आरोपित सर्प की कल्पना।[6] स्वप्न दृष्टान्त से जाग्रत में भी पदार्थों का वैतथ्य प्रतिपादित किया गया है जैसे स्वप्न में पूरे देश में जाकर भी जगने पर स्वयं को शैय्या पर ही पाता है उसी प्रकार जाग्रतकाल में दृश्यमान पदार्थ भी वितथ अर्थात् मिथ्या है। इस प्रकार स्वप्न–जागृत का प्रतीयमान भेद भी मिथ्या ही है, वस्तुतः दोनों अवस्थाओं में अभेद है।[7] अद्वैत प्रकरण में अद्वैत तत्त्व व उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया गया है एवं अन्त में

अलातशांति नामक अन्तिम प्रकरण में आचार्य ने अन्य मतों के विचारकों में पारस्परिक मतभेद दिखलाते हुये उन्हीं की युक्तियों से उनका खंडन किया है। जैसे–

जो–जो भी दृश्य प्रपंच है वह–वह मन का स्पन्दन है

जैसे अलात का घूमना।

अमनीभाव, मन स्पन्दन की समाप्ति है।

अतः अमनीभाव से दृश्य प्रपंच की समाप्ति है। यहाँ प्रपंच की प्रतीति और अप्रतीति दोनों ही भ्रांतिजनित है; परमार्थ की दृष्टि से न उसकी उत्पत्ति होती है और न लय। इस भ्रान्ति का आधार पर ब्रह्म है; क्योंकि कोई भी भ्रान्ति निराधार नहीं हो सकती। अतः रज्जू में सर्प अथवा शुक्ति में रजत के समान परब्रह्म में ही इस प्रपंच की प्रतीति हो रही है। ''यद्यपि अद्वैत प्रकरण में मुख्यतः अद्वैत तत्त्व को ही प्रतिपादित किया है, किन्तु अजातिवाद को पुनः प्रस्तुत करने के लिए और व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा अद्वैत को दृढ़ रूप से स्पष्ट करने हेतु चतुर्थ अलातशान्ति प्रकरण का प्रारम्भ किया गया है। इस प्रकार अद्वैत तत्त्व को जानने के बाद किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रहती; यही से अलातशान्ति प्रकरण का प्रारम्भ होता है।''[8] इस प्रकरण के प्रारम्भ में गौडपाद ने सत्वाद, असत्वाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद सभी मतों का खण्डन किया है। जातिवाद का खण्डन कर प्रमुखतः अपने सिद्धान्त 'अजातिवाद' का समर्थन किया है। प्रायः सभी दार्शनिक कारण से कार्य की उत्पत्ति मानते है, परन्तु गौडपाद ने बौद्धों के 'अजातिवाद' सिद्धान्त की स्थापना की है। प्रकरण में युक्तियों के स्वरूप का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण निम्न हैः–

(1) प्रपन्च का अत्यन्ताभाव

प्रपन्चों यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः।

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।।17।।[9]

अर्थः–प्रपन्च यदि होता तो निवृत्त हो जाता; इसमें संदेह नहीं, किन्तु (वास्तव में) यह द्वैत तो मायामात्र है, परमार्थतः तो अद्वैत ही है।

भावार्थः–यदि प्रपन्च विद्यमान होता है तो सचमुच ऐसा ही होता, परन्तु वह तो रज्जू में सर्प के समान कल्पित होने के कारण (वस्तुतः) है ही नहीं यानि यदि वह होता तो, निःसंदेह ही वह निवृत्त भी होता, क्योंकि जब तक जीव माया या मोह में बद्ध है तब तक द्वैत है, परमार्थ में तो केवल अद्वैत ही है। परमार्थतः अद्वैत की सिद्धि हेतु गौडपाद ने जो कारिका 17 के प्रथम भाग में कहा कि ''प्रपंच यदि होता तो उसकी–निवृत्ति असंदिग्ध होती या उसमें संशय नहीं होता'' उसमें प्रयुक्त कथन, भारतीय–दर्शन में 'तर्क' (प्रति–तथ्यात्मक हेतु मूलक कथन) रूपी युक्ति से सादृश्यता रखता है। इसी तर्क रूपी युक्ति का प्रयोग कारिकाकार ने 3/19 कारिका के उत्तर भाग में प्रयुक्त किया है; जो वस्तुतः अध्यात्म या आगमशास्त्र प्रतिपादित वचनों की युक्ति से सिद्धि के प्रयोजन को दर्शाता है।

यहाँ यह देखने की बात है कि जो तर्क या युक्ति का रूप यहाँ देखा गया है वह विश्लेषणात्मक स्वरूप का नहीं है न ही मूल मध्यमकशास्त्र में दी गई युक्तियों के समान है। यहाँ युक्ति के स्वरूप का मूल आधार या तो तर्कशास्त्र की प्रमुख वैध युक्तियों अन्वय–व्यतिरेकादि या विचार के नियमों के समान है।

(2) जीवनकल्पना का हेतु अज्ञान है

अनिश्चिता यथा रज्जूरन्धकारे विकल्पिता।

सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः।। 17।।[10]

अर्थः–जिस प्रकार (अपने स्वरूप से) निश्चय न की हुई रज्जू अन्धकार में सर्पादि भावों से कल्पना की जाती है उसी प्रकार आत्मा में भी तरह–तरह की कल्पनाएँ हो रही है।

भावार्थः–जिस प्रकार अपने स्वरूप से अनिश्चित अर्थात् यह ऐसी ही है–इस प्रकार निर्धारण न की हुई रज्जू मन्द अन्धकार में 'यह सर्प है?' जल की धारा है?' अथवा 'दण्ड है?' इस प्रकार से अनेक प्रकार से कल्पना की जाती है। उसी तरह सांसारिक धर्मरूप अपने विशुद्ध विज्ञप्तिमात्र अद्वितीय सत्ता स्वरूप से निश्चित न होने

के कारण ही आत्माजीव एवं प्राण आदि अनन्त विभिन्न भावों से विकल्पित हो रहा है। यहाँ जिस अज्ञान की बात की है उसका आधार सादृश्यता है। यह सादृश्यता जगत में अज्ञानवश स्ज्जू के स्वरूप को लेकर की गई कल्पनाएँ एवं आत्मा में अज्ञानवश जीव एवं प्राणादि की विभिन्न उपाधियों के बीच की सादृश्यतायें है।

इस प्रकार इस कारिका में एवं अन्य अनेक कारिकाओं में आचार्य गौडपाद द्वारा सादृश्यतामूलक आगमनात्मक युक्ति का प्रयोग देखा जा सकता है।

(3) आत्मा में भेद माया ही के कारण है

मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाजं कथंचन।

तत्त्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यतामृतं व्रजेत।।19।।[11]

अर्थः—इस अजन्मा अद्वैत में माया ही के कारण भेद है और किसी प्रकार नहीं; यदि इसमें वास्तविक भेद होता तो यह अमृत के स्वरूप मरणशीलता को प्राप्त हो जाता।

This unborn Advaita become modified (different) through Maya An object can have (bheda) only through Maya if it were to be modified in reality the immortal would have become mortal. (English Translation)

भावार्थः—यदि माया का भेद माया का न होकर वास्तविक होता तो व्याघात को प्राप्त होता यानि अमृतस्वरूप अविनाशी अद्वैत, विनाश को प्राप्त होता। कारिका की इस युक्ति में प्रयुक्त विचारधारा Counter-factual conditional अप्रत्यक्ष प्रमाण प्रकार की है जो 1/17 एवं 1/18 में भी बताई है। 3/19 में प्रयुक्त कथ्य को भिन्न प्रकार से युक्ति रूप में अन्वय—व्यतिरेक भाव से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसेः—

(अ) जो—जो सद्रूप है वह आदि अंत में भी है जगत् आदि अंत में नहीं है इसलिये जगत् सद्रूप नहीं है।

(ब) जो सादि सान्त है वह असद्रूप है, जगत् सादि सान्त है जगत् असद् रूप (मिथ्या) है।

(स) जिसका अतीत, भविष्य में अभाव है उसका वर्तमान में भी अभाव है। जगत् का वर्तमान में भाव है। अतः यह असत्य है कि जगत् का अतीत, भविष्य में अभाव है।

इस युक्ति के स्वरूप को अन्य रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है किः—

(अ) जो वस्तु भेद को प्राप्त है वह सावयव है।

(ब) आत्मा निरवयव है, सावयव नहीं होने में।

(स) इसलिए आत्मा भेद को प्राप्त नहीं है; अद्वय, अज, अमृत स्वरूप होने से।

(4) सद्सदादिवादों की अनुपपत्ति

स्वतो वा परतो वापि न किंचिद्वस्तु जायते।

सदसत्सदसद्वापि न किंचिद्वस्तु जायते।।22।।[12]

अर्थः—स्वतः अथवा परतः (किसी भी प्रकार) कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि सत्, असत् अथवा सदसत् ऐसी कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं होती।

भावार्थः—अपने से—दूसरे से अथवा दोनों ही से सत्, असत् अथवा सदसद्रूप से उत्पन्न नहीं होती—किसी भी प्रकार उसका जन्म होना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार घड़ा उसी घड़े से उत्पन्न नहीं हो सकता उसी प्रकार कोई भी वस्तु स्वयं अपने अपरिनिष्पन्न (पूर्णतया तैयार न हुए) स्वरूप से स्वतः ही उत्पन्न नहीं हो सकती और न किसी अन्य से अन्य की उत्पत्ति हो सकती है; जैसे घट से पट की अथवा पट से पटान्तर की तथा इसी तरह, विरोध होने के कारण दोनों से भी किसी की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार की घट और पट दोनों से घट या पट कोई उत्पन्न नहीं हो सकता।

इस कारिका में समान जन्यता कार्य मात्र की अनुपपत्ति बताते हुये जो युक्ति गौडपाद प्रस्तुत करते है उनमें नागार्जुन की युक्तियों का स्मरण हो जाता है। दोनों की सादृश्यता को विचार/तर्कणा के स्तर पर देखा जा सकता है। अनुवादक भूमिका में इस कारिका में युक्ति का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते है जैसेः—

(अ) ''कोई भी वस्तु न तो अपने से उत्पन्न हो सकती है और न किसी अन्य से ही।

(ब) यदि अपने से उत्पन्न है तो इसका अर्थ है जो घट अभी तक तैयार नहीं हुआ उसमें वहीं घट कैसे उत्पन्न होगा। घट अन्य से भी उत्पन्न नहीं हो सकता। तैयार घट से अन्य घट व पट किस प्रकार उत्पन्न होगा।

(स) पुनश्च तृतीय विकल्प में वस्तु सद–असद स्वयं से, पर से उत्पन्न नहीं हो सकती।

अनुवादक कहते है–''जो वस्तु है उसकी उत्पत्ति क्या होगी? जिसका अभाव है उसकी भी कहाँ से उत्पत्ति होगी? तथा जो है व नहीं भी है। ऐसा तो कोई वस्तु होना संभव नहीं है। इसलिये वस्तु की उत्पत्ति किसी प्रकार सिद्ध नहीं है अतः अजा विकार ही सिद्ध है।

आचार्य कहते हैः–

(अ) यदि वस्तु सत् है यानि विद्यमान है तो उत्पत्ति व्यर्थ है।

(ब) यदि असत् है, तो अनुत्पन्न है शशश्रृंग की तरह

(स) इसलिए दोनों ही नहीं है, व्याघात की वजह से।

(द) कोई/वस्तु आकस्मिक अहेतु भी नहीं हो सकती,

(ड) अतः वस्तु अनुत्पन्न है, अजात है।

इन तर्कों की साम्यता बौद्धों द्वारा विशेषकर नागार्जुन के अजातवाद के तर्कों से देखी जा सकती है। उपरोक्त दिये गये संक्षिप्त विवरणानुसार गौडपाद कारिका के चारों प्रकरणों का अध्ययन व अपने विचारों को चारों प्रकरणों में व्यवस्थित कर उसका युक्तियों के साथ प्रस्तुतीकरण है।

दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

संदर्भ :

1. आचार्य गौडपाद अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक, भूमिका–पृ॰–15

2. *Gaudapada – Dr T.M.P Mahadevan, Univ of Madras, Ed. 1952-54*

3. वही, पृ॰–2/32

4. श्रीशंकरात्प्रागद्वैतवाद–मुरलीधर पाण्डे

5. माण्डूक्यकारिका–2/31

6. वही–2/5

7. वही–1/12

8. आचार्य गौडपाद–अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक, भूमिका, पृ॰–20

9. ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्यार्थ), पृ॰–581–582

10. वही, पृ॰–613–614

11. वही, पृ॰—664

12. वही, पृ॰—718—719

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अन्नम्भट्ट, 'तर्क संग्रह', चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969

2. उपाध्याय, बलदेव, 'भारतीय दर्शन', शारदा मंदिर, वाराणसी, 1971

3. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, 'इशादिनौउपनिषद' मोतीलाल, जालान गीताप्रेस, गोरखपुर, 1964

4. धर्मराजध्वरीन्द्र, 'वेदान्तपरिभाषा', चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1937

5. मिश्र, केशव, 'तर्कभाषा', चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1953

6. वशिष्ट, ज्योत्सना, आचार्य गौडपाद—अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2014

7. शर्मा, उमाशंकर, ऋषि, 'सर्वदर्शन संग्रह', चौखम्बा विद्याभवन, 1968

8. शर्मा, बदरीदत्त, 'माण्डूक्योपनिषद', मेरठ, 1964

9. शास्त्री, शुकदेव, 'प्रमाण्यवाद समीक्षा', शिवा पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर, उदयपुर, 1993

• 10. त्रिपाठी, यमूना प्रसाद, माण्डूक्योपनिषद्, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2000